विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी: सामाजिक प्रासंगिकता

गोपाल के. कादेकोडी

बौद्धिक प्रक्रिया ने विशेषज्ञता के नाम पर विज्ञान, समाज विज्ञान और प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों के बीच सीमाएं खींचकर ज्ञान और ज्ञान के अन्वेषण को बांट दिया और उसे सामाजिक यथार्थ और प्रासंगिकता से दूर कर दिया। आम आदमी को इन विकासों की उपयोगिता को लेकर भ्रम होने लगा।

वैश्वीकरण और निजीकरण पर ज़ोर के चलते विकास संस्थानों ने अब नैतिक और नीतिपरक दर्शन से हटकर वैज्ञानिक जिज्ञासा, प्रौद्योगिकी विकास, कार्यकुशलता और प्रशासन की ओर रुख कर लिया है। लेकिन कुल मिलाकर पूरा ध्यान समाज को बेहतर बनाने की सामाजिक प्रतिबद्धता पर है। इसलिए नैतिक एवं सामाजिक हमदर्दी से युक्त एकीकृत विज्ञान ही वह नज़रिया है जो हमारी इस तलाश का टिकाऊ समाधान पेश कर सकता है।

वैज्ञानिक विकास

औद्योगिक क्रांति से पहले के युग में जब भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की बात की जाती थी तो उसका अर्थ हमेशा ऐसे 'एकीकृत विज्ञान' से लगाया जाता था जिसमें दर्शनशास्त्र, नीति शास्त्र, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, समाज विज्ञान, अर्थशास्त्र और मानव शास्त्र का संतुलित समन्वय हो। मान्यता थी कि केवल ऐसा 'एकीकृत विज्ञान' ही धरती को टिकाऊ विकास की ओर ले जा सकता है।

दुर्भाग्य से बौद्धिक प्रक्रिया ने विशेषज्ञता के नाम पर विज्ञान, समाज विज्ञान और प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों के बीच सीमाएं खींचकर ज्ञान और ज्ञान के अन्वेषण को बांट दिया और उसे सामाजिक यथार्थ और प्रासंगिकता से दूर कर दिया। यह आज की बात नहीं है। वर्ष 1776 में इंग्लैंड में उस जमाने के एक बुद्धिजीवी और चिंतक एडम स्मिथ (जो खगोल शास्त्र, पोलीमैथेमैटिक्स, विज्ञान और अन्य कई विषयों के विशेषज्ञ थे) ने 'एन एंक्वायरी इन टू दी नेचर एण्ड कॉज़ेस ऑफ दी वेल्थ ऑफ नेशंस' नामक किताब लिखी थी। इस किताब के पहले ही अध्याय में उन्होंने 'विशेषज्ञता और श्रम के विभाजन' की बात की है। वे औद्योगिक प्रबंधन और व्यापार में इन दो अवधारणाओं की उपयोगिता को दर्शाना चाहते थे। उनका कहना था कि विशेषज्ञता से प्रयासों में तेज़ी आती है और श्रम के विभाजन से कार्यक्षमता बढ़ती है और इस तरह धन में बढ़ोतरी होती है। उस समय ऐसा लिखने की वजह बिलकुल दूसरी थी। चूंकि धन व सम्पदा ही विकास का निर्णायक संकेतक था, इसलिए धन एकत्र करना ही एकमात्र माध्यम था।

इस तरह की धारणाओं पर सवार होकर और इंजीनियरिंग व वैज्ञानिक आविष्कारों, विकास व अनुप्रयोगों की बदौलत औद्योगिक क्रांति घटित हुई। लेकिन इसने मनुष्यों को विभिन्न वर्गों में बांट दिया। इससे संगठित और असंगठित क्षेत्र, कुशल और अकुशल श्रमिक जैसे विभाजन हुए। साथ ही कई ऐसे आविष्कार भी हुए जिनकी कोई ज़रूरत नहीं थी (जैसे परमाणु एवं हथियार प्रौद्योगिकी)। प्राकृतिक संसाधनों का विनाश होना भी शुरू हो गया।

इससे सामाजिक और आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका को लेकर स्वयं वैज्ञानिकों में ही इस कदर वाद-विवाद शुरू हो गए कि आम आदमी को इन विकासों की उपयोगिता को लेकर भ्रम होने लगा। अल्बर्ट आइंस्टाइन ने 1934 में ही विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बीच बढ़ते संघर्ष और समाज के लिए उसकी प्रासंगिकता को महसूस कर लिया था। 1930 के दशक में आई वैश्विक मंदी के संदर्भ में दिए गए उनके भाषण का एक अंश यहां पेश करना प्रासंगिक होगा:

"यदि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ऐसा कुछ है जो एक आम

आदमी को मौजूदा आर्थिक कठिनाइयों की प्रकृति पर अपनी राय जाहिर करने का साहस दे सकता है, तो वह है विशेषज्ञों के विचारों में निराशाजनक असमंजस ... मैं इसे अतीत में आए संकटों से अलग तरह का संकट मानता हूं जो उत्पादन के तौर-तरीकों में तेज़ विकास का परिणाम है। आज जिंदगी के लिए जितनी चीज़ों की ज़रूरत है, उनके उत्पादन के लिए आज उपलब्ध मानव श्रम का केवल एक हिस्सा ही काफी है...।"

"... मैं इसे (1930 के दशक में आई मंदी को) अतीत में आए संकटों से अलग तरह का संकट मानता हूं। यह उत्पादन के तौर-तरीकों में तेज़ विकास का परिणाम है। आज जिंदगी के लिए जितनी चीज़ों की ज़रूरत है, उनके उत्पादन के लिए आज उपलब्ध मानव श्रम का केवल एक हिस्सा ही काफी है...।"
- अल्बर्ट आइंस्टाइन

उन्होंने कई अवसरों पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में विकास को समाज से जोड़ने की पैरवी भी की थी।

विकास की वर्तमान स्थिति

आज की दुनिया विकास को एक अलग नज़रिए से देखती है जिसके साथ मानव विकास, मानवीय गरिमा, सशक्तिकरण और टिकाऊ विकास जैसे पहलू जुड़े रहते हैं। इसके लिए तीन तरह की सम्पत्तियों - मानव निर्मित पूंजीगत संसाधन, प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन के बीच संतुलन ज़रूरी है। इस संतुलन के लिए विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और सामाजिक विज्ञान में एक तालमेल ज़रूरी है।

भारत में विकास-दृष्टि का एक लंबा इतिहास रहा है। इसकी शुरुआत भूतपूर्व रियासत मैसूर को आधुनिक व समृद्ध राज्य बनाने को लेकर एम. विश्वेश्वरैया के विचारों से मानी जा सकती है। 1903 में जब उन्होंने मैसूर के निकट शिवसमुद्रम में भारत का पहला पनबिजली बांध और विद्युत संयंत्र स्थापित किया, तो उस समय उन्होंने देश के आधुनिकीकरण के लिए काफी योजनाएं सोच रखी थीं। साथ ही उन्होंने समाज की कमज़ोरियों और ताकत का भी अनुमान लगा लिया था। उनके ही शब्दों में : "लोग आम तौर पर निष्क्रिय और अकर्मण्य होते हैं, वे जीवन के राष्ट्रीय मानदंडों, विचारों और कार्यों की बजाय जाति व समुदाय, तथा आधुनिक विश्व के सम्मिलित अनुभवों की बजाय सदियों पुरानी परम्पराओं से दिशा लेते हैं। बहुत से लोग दूसरों पर निर्भर रहकर महज़ सामाजिक परजीवी बनकर रह गए हैं।"

लेकिन उन्होंने यह भी कहा,

"यदि देश की मानव शक्ति और भौतिक संसाधनों को राष्ट्रीय लक्ष्यों में सबसे आगे रखें, यदि लोगों के सामान्य और तकनीकी ज्ञान को विकसित करें, यदि निजी पहल को प्रोत्साहित करें, यदि उत्पादन बढ़ाने में सभी नवीनतम आविष्कारों व खोजों का इस्तेमाल करें, यदि विदेशी अनुभवों को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ढालें और उपयोगी विदेशी संस्थानों को स्वीकार करें, संक्षेप में कहें तो यदि सभी आवश्यक व संभव सुधारों को देश में लागू किया जाए तो भारत का राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक विकास तेज़ गति से होगा जिससे आने वाली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित हो सकेगा।"

अब लौटकर 'एकीकृत विज्ञान' के आधार पर वैश्विक समस्याओं के समाधान का प्रयास करने का वक्त आ गया है। इसलिए सभी समस्याओं के समाधान में केवल सामाजिक विज्ञान ही काम नहीं आ सकता। हालांकि प्रौद्योगिकी व वैज्ञानिक समाधान के दौरान दिमाग में सामाजिक मुद्दों को रखना उपयोगी होगा।

एकीकरण की नीतियां

इस सम्बंध में भारत सरकार का विज्ञान नीति वक्तव्य (1958) अच्छा प्रस्थान बिंदु है। इसमें पर्याप्त संख्या में वैज्ञानिकों की आपूर्ति, विज्ञान सम्बंधी गतिविधियों के लिए प्रशिक्षण और ज्ञान के प्रसार तथा इसके लाभों को देश की जनता के बीच पहुंचाना सुनिश्चित करने के लिए विज्ञान एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों को बढ़ावा देने में 'राज्य' की भूमिका के बारे में बात की गई है।

वर्ष 1983 का भारतीय प्रौद्योगिकी नीति वक्तव्य आर्थिक प्रगति के एक आधार के रूप में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को मान्यता देता है। हालांकि प्रौद्योगिक विकास लोगों की दिनचर्या और उनकी सामाजिक अपेक्षाओं को प्रभावित करता है, यह नीति वक्तव्य सांस्कृतिक दायरों व संसाधनों की सीमाओं में रहते हुए जनता की अपेक्षाओं को पूरा करने की ज़रूरत पर भी ज़ोर देता है।

वर्ष 1958 में स्थापित भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद भी समय-समय पर वैज्ञानिक विकास की सामाजिक प्रासंगिकता और सामाजिक आकांक्षाओं के बीच की दूरी को पाटने पर ज़ोर देती आई है, हालांकि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी जगत और आम जनता के बीच अक्सर विभाजन ही देखने में आया है। इसे सबसे पहले स्वर्गीय विक्रम साराभाई ने महसूस किया था। उन्होंने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को आम जनता के बीच ले जाने के लिए एक प्रबंधकीय नज़रिए की ज़रूरत जताई थी। उन्होंने इस सम्बंध में नीति नियंताओं को कई सुझाव दिए थे। इनमें से कुछ यहां दिए जा रहे हैंः

- कई बार आविष्कारों की राह में रुकावटें प्रौद्योगिकी के बारे में जानकारी या उपकरणों के अभाव की वजह से नहीं, बल्कि संस्थानों के भीतर मौजूद सामाजिक कारकों के कारण पैदा होती हैं।
- समाज की असल समस्याओं से विज्ञान को जोड़ने के लिए ऐसा संयुक्त अनुसंधान संगठन काफी फायदेमंद हो सकता है जिसमें उद्योग भी शामिल हों।
- तेज़ी से बढ़ते शहरीकरण और बढ़ती गरीबी जैसी समस्याओं का समाधान हमारे विकास कार्यक्रमों में किए जाने की ज़रूरत है।
- अपशिष्ट पदार्थों की रिसाइक्लिंग, मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाना, जिनेटिक इंजीनियरिंग को बढ़ावा, प्रदूषण को कम करना, उपभोक्ताओं को प्रौद्योगिकी ज्ञान देने में पारदर्शिता, संचार व्यवस्था में सुधार इत्यादि ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर प्राथमिकता से अमल करना चाहिए।
- समाज और राजनीतिक संगठनों के बीच पारस्परिक निर्भरता व सहयोग बढ़ाने के उपाय करना और पारिस्थितिकी सिद्धांतों को मान्यता देना।
- बहु-विषयी प्रयास तथा व्यक्तियों और संस्थानों की विविधता को मान्यता देना।
- राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को हमेशा ध्यान में रखना।

समाधान किस चीज़ का?

वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास की बात करते समय कुछ प्रमुख सामाजिक मुद्दों को ध्यान में रखना फायदेमंद रहेगाः

- समाज में इस बात को लेकर चिंता बढ़ रही है कि कुछ इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिक विकास कार्यों में लिंग-भेद किया जाता है; जैसे महिला स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक मसलों पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है।
- इस बात को लेकर भी चिंता है कि विकास कार्यों में स्थान विशेष को लेकर भी भेद किया जाता है (जैसे विकास अक्सर शहर केंद्रित होते हैं)। इससे क्षेत्रीय असमानता बढ़ती है।
- यह चिंता भी व्याप्त है कि संसाधनों का इस्तेमाल भावी पीढ़ियों को ध्यान में रखते हुए नहीं किया जा रहा, जैसे जीवाश्म ईंधन के दोहन से सम्बंधित प्रौद्योगिकी।
- बीते 58 सालों में अनेक योजनाओं के बावजूद गरीबी अब भी सबसे ज्वलंत मुद्दा बनी हुई है जिससे अशांति, विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष, भुखमरी और वैज्ञानिक व प्रौद्योगिक विकास के प्रति कुंठा पैदा होती है। इस सामाजिक बुराई के उन्मूलन में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी द्वारा कोई विशेष योगदान नहीं करने पर सवाल उठना स्वाभाविक है।
- भारत का औद्योगिक विकास आम तौर पर लघु उद्योगों पर आधारित है। लेकिन प्रौद्योगिक विकास बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन को ही बढ़ावा देता है या फिर उच्च वर्ग के लोगों की ज़रूरतों की पूर्ति करता है। अनुकूल प्रौद्योगिकी शब्द का तो मानो

विज्ञान जगत से सफाया ही हो गया है।

एकीकरण की चुनौतियां

समाज विज्ञानी कई मोर्चों पर अपनी विफलताओं की बातें करते आए हैं। प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध इस्तेमाल का उल्लेख करते हुए जाने-माने समाज वैज्ञानिक केनिथ ई. बोल्डिंग ने 1960 के दशक में धरती को एक बंद अंतरिक्ष यान के रूप में देखने के बढ़ते नज़रिए के प्रति आगाह किया थाः

"खास तौर से अर्थशास्त्री खुली धरती से बंद धरती में बदलाव के परिणामों को देख पाने में विफल रहे हैं ...मैं यहां रेखांकित करूंगा कि मानव कल्याण के पहलुओं को नज़रअंदाज़ करके उत्पादन और उपभोग को लेकर हमारी सनक ने प्रौद्योगिक परिवर्तनों को काफी हद तक विकृत कर दिया है।"

सामाजिक प्रणाली काफी जटिल है। इसमें विभिन्न प्रकृति के लोग शामिल होते हैं। सामाजिक मुद्दों को सुलझाने के लिए 'व्यक्तिगत' बनाम 'सामाजिक' आधार पर लगातार संघर्ष चलता आया है। व्यावहारिक स्तर पर कुछ सामाजिक बुराइयां इस तरह हैंः

- गरीबी का स्तर और आय में असमानता।
- सामाजिक ढांचे में लिंग भेद।
- शहरों के प्रति ज़्यादा आग्रह होने और प्रौद्योगिकीय केंद्रों की वजह से क्षेत्रीय भेदभाव।
- प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन और वैकल्पिक प्रौद्योगिकी का विकास नहीं होने की वजह से पीढ़ीगत असमानता।
- समाज की मूलभूत ज़रूरतों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी कौशल का अभाव।
- उच्च वर्ग के उपभोग के चक्कर में असंतुलित विकास।
- स्वास्थ्य एवं जिंदगी की ज़रूरतों की गुणवत्ता के सम्बंध में प्रौद्योगिकी विकास पर ज़ोर नहीं देना।
- देसी ज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उपेक्षा की वजह से आबादी का एक बड़ा हिस्सा प्रौद्योगिकी और विकास की मुख्यधारा से कट गया है।
- ऐसे रोज़गार की उपलब्धता के प्रति उपेक्षा जिससे मानव सशक्तीकरण हो और मानवीय गरिमा बढ़ें।

ये तथ्य इस बात पर ज़ोर देते हैं कि विज्ञान, इंजीनियरिंग और समाज विज्ञान से जुड़े विशेषज्ञों को प्रयोगशालाओं में मिलने वाली सफलताओं और प्रकाशनों से थोड़ा परे हटकर इन प्राथमिकताओं के समाधान के लिए प्रौद्योगिकी विकास पर लगातार संवाद करते रहना चाहिए।

सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान की पद्धतियों के एकीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए कहा जा सकता है कि लघु, मझौले एवं बड़े उद्योगों और स्थानीय, ग्रामीण व शहरी लोगों के बीच प्रौद्योगिकी विकास के प्रचार-प्रसार के लिए एक संतुलित नज़रिए की ज़रूरत है। इसके लिए सार्वजनिक अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों को परियोजनाओं के चयन और व्यापक पैमाने पर सूचनाओं के प्रसार की प्रक्रिया में काफी समझदारी दिखानी होगी। इसके अलावा सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) की संभावनाएं भी तलाशनी चाहिए ताकि ऊपर बताए गए क्षेत्रों के बीच की खाई को पाटा जा सके। साथ ही पेटेंट व रॉयल्टी और 'टेक्नोलॉजी ऑडिट' के आधार पर देसी तकनीकों के स्थानांतरण के लिए कुछ कानूनी बदलाव भी ज़रूरी हैं ताकि इसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया में जेंडर और क्षेत्रीय संतुलन बनाया जा सके और रोज़गार का भी सृजन किया जा सके।

इस दिशा में कुछ प्रगति भी हुई है। कई आईआईटी, आईसीएआर, आईसीएमआर, सीएसआईआर और अनेक इंजीनियरिंग संस्थानों ने अपने यहां मानविकी एवं समाज विज्ञान के विभाग स्थापित किए हैं या फिर कृषि, जनांकिक परिवर्तन, श्रम को बढ़ावा देने वाली तकनीकों, स्वच्छ तकनीक, ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों इत्यादि पर अनुसंधान शुरू किए हैं।

कई एनजीओ भी अपने मिशन के रूप में या फिर अतिरिक्त सामाजिक प्रतिबद्धता मानते हुए सामाजिक

समस्याओं के समाधान के लिए प्रौद्योगिकी विकास के इस एकीकृत नज़रिए को बढ़ावा दे रहे हैं। अब तो प्रौद्योगिकी विकास में निजी क्षेत्रों को शामिल करने का प्रचलन भी बढ़ रहा है।

वर्ष 1939 में महात्मा गांधी की 70वीं सालगिरह के अवसर पर अल्बर्ट आइंस्टाइन ने यह कहा था:

"एक राजनेता की सफलता लोगों को कायल करने की उसकी क्षमता पर निर्भर करती है, न कि कौशल या तकनीकी साधनों में उसकी विशेषज्ञता पर... आने वाली पीढ़ियों को इस बात पर यकीन ही नहीं होगा कि हाड़-मांस का कोई ऐसा व्यक्ति भी इस धरती पर चला होगा।"

चूंकि महात्मा गांधी गरीबों और शोषितों का प्रतिनिधित्व करते थे, इसलिए आइंस्टाइन के उस बयान का सामान्यीकरण किया जा सकता है।

अंत में सैद्धांतिक भौतिक शास्त्री स्टीफन हॉकिंग को याद करना उचित होगा जिन्होंने 2006 में इंटरनेट पर एक सवाल पूछा था : "एक ऐसी दुनिया में जहां चारों ओर राजनीतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय अराजकता फैली हुई है, वहां मानव जाति अगले 100 साल तक अपने अस्तित्व को कैसे बचाए रख सकती है?" करीब 25 हज़ार लोगों ने जवाब देने का प्रयास किया था। हालांकि उनमें से अधिकांश लोग हॉकिंग का जवाब जानना चाहते थे। अंततः हॉकिंग ने जवाब दिया था, "मुझे नहीं पता। इसीलिए तो मैंने यह सवाल पूछा है।" बहरहाल, यह तलाश जारी रहनी चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***